ଅଷ୍ଟାବକ୍ରସଂହିତା

ବା

ଅଷ୍ଟାବକ୍ରଗୀତା

(ଦ୍ୱିତୀୟ ଅଧ୍ୟାୟ)

(ମୂଳ ସଂସ୍କୃତ ପାଠ୍ୟ ତଥା ହୀନ୍ଦୀ ଓ ଇଂରାଜୀ ଅନୁବାଦ ସ ସହ)

ଓଡିଆ ଅନୁବାଦ – **ଲଲାଟେନ୍ଦୁ କବି**

ଅଷ୍ଟାବକ୍ରସଂହିତା ବା ଅଷ୍ଟାବକ୍ରଗୀତା

ପ୍ରଯୁକ୍ତ ଛନ୍ଦ – ପଥ୍ୟାବକ୍ତ୍ର ଅନୁଷ୍ଟୁପ୍

ଦ୍ୱିତୀୟ ଅଧ୍ୟାୟ (ମୂଳ ସଂସ୍କୃତ ପାଠ୍ୟ ସହ)

ଜନକ ଉବାଚ —

ଅହୋ ପ୍ରକୃତି ଉର୍ଦ୍ଧ୍ୱସ୍ଥ
ଶାନ୍ତ ବୋଧ ମୁଁ ନିଷ୍କଳ ।
ଏଯାଏ ମୋହ ସଂଯୋଗେ
ଥିଲି ତୁଚ୍ଛା ବିଡମ୍ବନେ ॥ 2.1

ପ୍ରକାଶିତ ଯଥା ଦେହେ
ତଥା ବୈଶ୍ୱିକ ମୋ ସ୍ଥିତି ।
ମୋର ଏ ବିଶ୍ୱଟା ସାରା
ଅଥବା ନାହିଁ କିଞ୍ଚନ ॥ 2.2

ଏ ଶରୀର ତଥା ବିଶ୍ୱ
ଏବେ ମୁଁ କରି ବର୍ଜନ ।
ବିଶେଷ କୌଶଳେ ଦେଖେ
ପରମାତ୍ମାଙ୍କୁ ନିତ୍ୟଶ ॥ 2.3

ଜଳଠାରୁ ନୁହେଁ ଭିନ୍ନ

ଊର୍ମିକା ଫେନ ବୁଦ୍‌ବୁଦ ।

ତଥା ଆତ୍ମାରୁ ସମ୍ଭୂତ

ବ୍ରହ୍ମାଣ୍ଡ ସମତା ସହ ॥ 2.4

ବିଚାରିଲେ ଯଥା ବସ୍ତ୍ରେ

ତନ୍ତୁ ମାତ୍ର ହିଁ ସତ୍ୟତା ।

ସାରା ବିଶ୍ୱେ ହିଁ ସେ ଭାବେ

ଆତ୍ମା କେବଳ ରାଜିତ ॥ 2.5

ଯଥା ଇକ୍ଷୁକରେ ଛନ୍ନ

ଶର୍କରା ବ୍ୟାପ୍ତ ସେଥିରେ ।

ତଥା ମୋଠି ରହେ ବ୍ୟାପୀ

ଏହି ବିଶ୍ୱ ନିରନ୍ତର ॥ 2.6

ମୋହେ ଆତ୍ମା ଜଗତ୍ ଲାଗେ

ନ ଦିଶେ ବିଶ୍ୱ ବୋଧରେ ।

ମୋହେ ରଜ୍ଜୁ ଦିଶେ ସର୍ପ

ଅମୋହେ ନ ଦିଶେ ଯଥା ॥ 2.7

ପ୍ରକାଶ ସ୍ୱୀୟ ମୋ ରୂପ
ତଦ୍ଭିନ୍ନ ମୁଁ ନୁହେଁ କିଛି ।
ପ୍ରକାଶେ ପ୍ରକଟେ ବିଶ୍ୱ
ଅହଂ-ଉଦ୍ଦୀପନେ ତଥା ॥ 2.8

ଆଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟ କଳ୍ପନା-ବିଶ୍ୱ
ମୋତେ ସେ ଦୃଶ୍ୟ ଅଜ୍ଞାନେ ।
ଶାମୁକାରେ ଯଥା ରୂପା
ସର୍ପେ ରଜ୍ଜୁ କରେ ଜଳ ॥ 2.9
କରେ= କିରଣରେ;

ମୋଠାରୁ ବିଶ୍ୱ ନିଷ୍ପନ୍ନ
ମୋଠାରେ ଲୀନ ହେବ ସେ ।
କ୍ଷେତ୍ରେ ଘଟ ଜଳେ ବୀଚି
ସୁନାରେ ମୁଦ୍ରିକା ଯଥା ॥ 2.10

ନମସ୍ୟ ମୁଁ ମହାଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟ
ନାହିଁ ବିନାଶ ଯାର ମୁଁ ।
ବ୍ରହ୍ମାଠୁ ତୃଣ ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ
ସୃଷ୍ଟିନାଶେ ଅନାହତ ॥ 2.11

ନମସ୍ୟ ମୁଁ ମହାଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟ
ଦେହ ଥାଇ ବି ଯେ ସ୍ଥିର ।
ଯାଏନା କାହିଁ ଆସେନା
ବ୍ୟାପ୍ତ ସଂପୂର୍ଣ୍ଣ ବିଶ୍ୱରେ ॥ 2.12

ନମସ୍ୟ ମୁଁ ମହାଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟ
କୁଶଳୀ ନାହିଁ ମୋ ସମ ।
ଦେହେ ନ କରି ଯେ ସ୍ପର୍ଶ
କରେ ସୃଷ୍ଟିକୁ ଧାରଣ ॥ 2.13

ନମସ୍ୟ ମୁଁ ମହାଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟ
କିଞ୍ଚିତ୍ ଯାହାର ଏ ନୁହେଁ ।
ଅଥବା ଯାର ଏ ସର୍ବ
ଜ୍ଞାତବ୍ୟ ସଚରାଚରେ ।॥ 2.14

ଜ୍ଞାନ ଜ୍ଞେୟ ତଥା ଜ୍ଞାତା

ନାହିଁ ଏ ଭେଦ ବାସ୍ତବେ ।

ଅଜ୍ଞାନ ହେତୁ ଏ ଦୃଷ୍ଟ

ମୁଁ ଏକା ସେ ନିରଞ୍ଜନ ॥ 2.15

ସମସ୍ତ ବେଦନା ମୂଳେ

ଏହି ଭେଦ ହିଁ କାରଣ ।

ଏ ମୋହ ନାଶନେ ମୁକ୍ତି

ନାହିଁ ତଭିନ୍ନ ଔଷଧି ॥ 2.16

ବୋଧ ମାତ୍ରକ ମୋ ସତ୍ତା

ଉପାଧି ସବୁ କଳ୍ପିତ ।

ବିଚାରି ଏ କଥା ନିତ୍ୟ

ସ୍ଥିତି ମୋ ନିର୍ବିକଳ୍ପରେ ॥ 2.17

ଅନାଶ୍ରୟ ସଦା ଶାନ୍ତ

ଅଭ୍ରାନ୍ତ ମୁଁ ଅବନ୍ଧନ ।

ଅହୋ ମୋ ଆଶ୍ରୟେ ବିଶ୍ୱ,

ମୋଠାରେ ନାହିଁ ବସ୍ତୁତଃ ॥ 2.18

ଏ ଶରୀର ତଥା ବିଶ୍ୱ

ନୁହେଁ କିଛି ବି ନିଶ୍ଚୟ ।

ଶୁଦ୍ଧ ଚିନ୍ମାତ୍ର ଆତ୍ମାର

ତା ମଧ୍ୟେ କାହିଁ କଳ୍ପନା ॥ 2.19

ଶରୀର ନରକ ସ୍ୱର୍ଗ

ଭୟ ଓ ମୋକ୍ଷ ବନ୍ଧନ ।

କଳ୍ପନା ମାତ୍ର ଏ ସର୍ବ

ଚିଦାତ୍ମା ମୁଁ କି ହେବ ମୋ । 2.20

ଅହୋ ! ଜନସମୂହେ ବି

ଦେଖେ ନା ଦ୍ୱୈତଭାବ ମୁଁ ।

ଲାଗେ ଶୂନ୍ୟ ବନ ପ୍ରାୟ

କା ସଙ୍ଗେ ହେବ ବନ୍ଧନ । 2.21

ନୁହେଁ ମୋ, ମୁଁ ନୁହେଁ ଦେହ,

ନୁହେଁ ଜୀବ, ମୁଁ ଚେତନା ।

ଜୀବନେ ମୋ ସ୍ପୃହା ମାତ୍ର

ମୋର ଏକ ହିଁ ବନ୍ଧନ ॥ 2.22

ଅହୋ ଭୁବନକଲ୍ଲୋଳେ

ଚିତ୍ତବାତ ସମୁଦ୍ଗମେ ।

ବ୍ରହ୍ମାଣ୍ଡରୂପକ ସ୍ରୋତ

ହୁଏ ତତ୍କାଳ ଉତ୍ଥିତ ॥ 2.23

ଅହୋ ଏ ବ୍ୟାପ୍ତ ବାରୀଶେ

ଚିତ୍ତବାୟୁର ସଂଯମେ ।

ଯାତ୍ରୀର ସୃଷ୍ଟି-ବୋହିତ୍ର

ହୁଏ ନଷ୍ଟ ମୁହୂର୍ତ୍ତକେ ॥ 2.24

ଆଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟ ମୁଁ ମହାସିନ୍ଧୁ

ଆଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟ ପ୍ରାଣ-ଊର୍ମିକା ।

ଜନ୍ମି ଖେଳି ହୁଏ ନଷ୍ଟ

ମଦ୍ଭ ବିଷ୍ଣ ସ୍ୱଭାବତଃ ॥ 2.25

ଲଲାଟେନ୍ଦୁ କବି
202306151737

aSTAvakra SaMhitA/gItA

जनक उवाच —

अहो निरंजनः शान्तो
बोधोऽहं प्रकृतेः परः ।
एतावंतमहं कालं
मोहेनैव विडम्बितः ॥ 2.1

यथा प्रकाशयाम्येको
देहमेनो तथा जगत् ।
अतो मम जगत्सर्वम-
थवा न च किंचन ॥ 2.2

सशरीरमहो विश्वं
परित्यज्य मयाऽधुना ।
कुतश्चित् कौशलादेव
परमात्मा विलोक्यते ॥ 2.3

यथा न तोयतो भिन्नास्-
तरंगाः फेन बुदबुदाः।
आत्मनो न तथा भिन्नं
विश्वमात्मविनिर्गतम् ॥ 2.4

तंतुमात्रो भवेदेव
पटो यद्वद्विचारितः।
आत्मतन्मात्रमेवेदं
तद्वद्विश्वं विचारितम् ॥ 2.5

यथैवेक्षुरसे क्लृप्ता
तेन व्याप्तैव शर्करा ।
तथा विश्वं मयि क्लृप्तं
मया व्याप्तं निरन्तरम् ॥ 2.6

आत्माऽज्ञानाज्जगद्भाति
आत्मज्ञानान्न भासते ।
रज्जवज्ञानादहिर्भाति
तज्ज्ञानाद्भासते न हि ॥ 2.7

प्रकाशो मे निजं रूपं
नातिरिक्तोऽस्म्यहं ततः।
यदा प्रकाशते विश्वं
तदाऽहंभास एव हि ॥ 2.8

अहो विकल्पितं विश्वं
ज्ञानान्मयि भासते ।
रूप्यं शुक्तौ फणी रज्जौ
वारि सूर्यकरे यथा ॥ 2.9

मत्तो विनिर्गतं विश्वं
मय्येव लयमेष्यति।
मृदि कुम्भो जले वीचिः
कनके कटकं यथा ॥ 2.10

अहो अहं नमो मह्यं
विनाशो यस्य नासित मे ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं
जगन्नाशेऽपि तिष्ठतः ॥ 2.11

अहो अहं नमो मह्यं
एकोऽहं देहवानपि ।
क्वचिन्न गन्ता नागन्ता
व्याप्य विश्वमवस्थितः ॥ 2.12

अहो अहं नमो मह्यं
दक्षो नास्तीह मत्समः ।
असंस्पृश्य शरीरेण
येन विश्वं चिरं धृतम्।।2.13

अहो अहं नमो मह्यं
यस्य मे नास्ति किञ्चन ।
अथवा यस्य मे सर्वं
यद्वाङ्मनसगोचरम् ॥ 2.14

ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता
त्रितयं नास्ति वास्तवम् ।
अज्ञानाद्भाति यत्रेदं
सोऽहमस्मि निरञ्जनः 2.15

द्वैतमूलमहो दुःखं
नान्यत्तस्यास्ति भेषजम्।
दृश्यमेतन्मृषा सर्वं
एकोऽहं चिद्रसोऽमलः ॥ 2.16

बोधमात्रोऽहमज्ञाना-
दुपाधिः कल्पितो मया ।
एवं विमृशतो नित्यं
निर्विकल्पे स्थितिर्मम ॥ 2.17

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा
भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया ।
अहो मयि स्थितं विश्वं
वस्तुतो न मयि स्थितम् ॥ 2.18

सशरीरमिदं विश्वं
न किञ्चिदिति निश्चितम् ।
शुद्धचिन्मात्र आत्मा च
तत्कस्मिन् कल्पनाधुना ॥ 2.19

शरीरं स्वर्गनरकौ
बन्धमोक्षौ भयं तथा ।
कल्पनामात्रमेवैतत्
किं मे कार्यं चिदात्मनः®॥ 2.20

अहो जनसमूहेऽपि
न द्वैतं पश्यतो मम ।
अरण्यमिव संवृत्तं
क्व रतिं करवाण्यहम् ॥ 2.21

नाहं देहो न मे देहो
जीवो नाहमहं हि चित् ।
अयमेव हि मे बन्ध
आसीद् या जीविते स्पृहा ॥ 2.22

अहो भुवनकल्लोलै-
र्विचित्रैर्द्राक् समुत्थितम् ।
मय्यनन्तमहाम्भोधौ
चित्तवाते समुद्यते ॥ 2.23

मय्यनन्तमहाम्भोधौ

चित्तवाते प्रशाम्यति ॥

अभाग्याज्जीववणिजो

जगत्पोतो विनश्वरः ॥ 2.24

मय्यनन्तमहाम्भोधा

वाश्चर्यं जीववीचयः ।

उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति

प्रविशन्ति स्वभावतः ॥ 2.25

अष्टावक्र गीता दूसरा अध्याय - Second Chapter of Ashtavakr Geeta

जनक उवाच -

अहो निरंजनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।
एतावंतमहं कालं मोहेनैव विडम्बितः॥२-१॥

राजा जनक कहते हैं - आश्चर्य! मैं निष्कलंक, शांत, प्रकृति से परे, ज्ञान स्वरुप हूँ, इतने समय तक मैं मोह से संतप्त किया गया॥१॥

King Janaka says: Amazingly, I am flawless, peaceful, beyond nature and of the form of knowledge.
It is ironical to be deluded all this time.॥1॥

यथा प्रकाशयाम्येको देहमेनो तथा जगत्।
अतो मम जगत्सर्वम- थवा न च किंचन॥२-२॥

जिस प्रकार मैं इस शरीर को प्रकाशित करता हूँ, उसी प्रकार इस विश्व को भी। अतः मैं यह समस्त विश्व ही हूँ अथवा कुछ भी नहीं॥२॥

As I illumine this body, so I illumine the world. Therefore, either the whole world is mine or nothing is. ||2||

सशरीरमहो विश्वं परित्यज्य मयाऽधुना।
कुतश्चित् कौशलादेव परमात्मा विलोक्यते॥२-३॥

अब शरीर सहित इस विश्व को त्याग कर किसी कौशल द्वारा ही मेरे द्वारा परमात्मा का दर्शन किया जाता है॥३॥

Now abandoning this world along with the body, Lord is seen through some skill. ||3||

यथा न तोयतो भिन्नास्- तरंगाः फेन बुदबुदाः।
आत्मनो न तथा भिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम् ॥२-४॥

जिस प्रकार पानी लहर, फेन और बुलबुलों से पृथक नहीं है उसी प्रकार आत्मा भी स्वयं से निकले इस विश्व से अलग नहीं है॥४॥

Just as waves, foam and bubbles are not different from water, similarly all this world which has emanated from self, is not different from self. ||4||

तंतुमात्रो भवेदेव पटो यद्वद्विचारितः।
आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वं विचारितम्॥२-५॥

जिस प्रकार विचार करने पर वस्त्र तंतु (धागा) मात्र ही ज्ञात होता है, उसी प्रकार यह समस्त विश्व आत्मा मात्र ही है॥५॥

On reasoning, cloth is known to be just thread, similarly all this world is self only. ||5||

यथैवेक्षुरसे क्लृप्ता तेन व्याप्तैव शर्करा।
तथा विश्वं मयि क्लृप्तं मया व्याप्तं निरन्तरम्॥२-६॥

जिस प्रकार गन्ने के रस से बनी शक्कर उससे ही व्याप्त होती है, उसी प्रकार यह विश्व मुझसे ही बना है और निरंतर मुझसे ही व्याप्त है॥६॥

Just as the sugar made from sugarcane juice has the same flavor, similarly this world is

made out from me and is constantly pervaded by me. ॥6॥

आत्माऽज्ञानाज्जगद्भाति आत्मज्ञानान्न भासते।
रज्जवज्ञानादहिर्भाति तज्ज्ञानाद्भासते न हि॥ २-७॥

आत्मा अज्ञानवश ही विश्व के रूप में दिखाई देती है, आत्म-ज्ञान होने पर यह विश्व दिखाई नहीं देता है। रस्सी अज्ञानवश सर्प जैसी दिखाई देती है, रस्सी का ज्ञान हो जाने पर सर्प दिखाई नहीं देता है॥७॥

Due to ignorance, self appears as the world; on realizing self it disappears. Due to oversight a rope appears as a snake and on correcting it, snake does not appear any longer. ॥7॥

प्रकाशो मे निजं रूपं नातिरिक्तोऽस्म्यहं ततः।
यदा प्रकाशते विश्वं तदाऽहंभास एव हि॥ २-८॥

प्रकाश मेरा स्वरुप है, इसके अतिरिक्त मैं कुछ और नहीं हूँ। वह प्रकाश जैसे इस विश्व को प्रकाशित करता है वैसे ही इस "मैं" भाव को भी॥८॥

Light is my very nature and I am nothing else besides that. That light illumines the ego as it illumines the world. ॥8॥

अहो विकल्पितं विश्वंज्ञानान्मयि भासते।
रूप्यं शुक्तौ फणी रज्जौ वारि सूर्यकरे यथा॥ २-९॥

आश्चर्य, यह कल्पित विश्व अज्ञान से मुझमें दिखाई देता है जैसे सीप में चाँदी, रस्सी में सर्प और सूर्य किरणों में पानी॥९॥

Amazingly, this imagined world appears in me due to ignorance, as silver in sea-shell, a snake in the rope, water in the sunlight.॥9॥

मत्तो विनिर्गतं विश्वं मय्येव लयमेष्यति।
मृदि कुम्भो जले वीचिः कनके कटकं यथा॥ २-१०॥

मुझसे उत्पन्न हुआ विश्व मुझमें ही विलीन हो जाता है जैसे घड़ा मिटटी में, लहर जल में और कड़ा सोने में विलीन हो जाता है॥१०॥

This world is originated from me and gets absorbed in me, like a jug back into clay, a wave into water, and a bracelet into gold.॥10॥

अहो अहं नमो मह्यं विनाशो यस्य नास्ति मे।
ब्रह्मादिस्तंबपर्यन्तं जगन्नाशोऽपि तिष्ठतः॥ २-११॥

आश्चर्य है, मुझको नमस्कार है, समस्त विश्व के नष्ट हो जाने पर भी जिसका विनाश नहीं होता, जो तृण से ब्रह्मा तक सबका विनाश होने पर भी विद्यमान रहता है॥११॥

Amazing! Salutations to me who is indestructible and remains even after the destruction of the whole world from Brahma down to the grass.॥11॥

अहो अहं नमो मह्यं एकोऽहं देहवानपि।
क्वचिन्न गन्ता नागन्ता व्याप्य विश्वमवस्थितः॥ २-१२॥

आश्चर्य है, मुझको नमस्कार है, मैं एक हूँ, शरीर वाला होते हुए भी जो न कहीं जाता है और न कहीं आता है और समस्त विश्व को व्याप्त करके स्थित है॥१२॥

Amazing! Salutations to me who is one,who appears with body, neither goes nor come anywhere and pervades all the world.॥12॥

अहो अहं नमो मह्यं दक्षो नास्तीह मत्समः।
असंस्पृश्य शरीरेण येन विश्वं चिरं धृतम्॥२-१३॥

आश्चर्य है, मुझको नमस्कार है, जो कुशल है और जिसके समान कोई और नहीं है, जिसने इस शरीर को बिना स्पर्श करते हुए इस विश्व को अनादि काल से धारण किया हुआ है॥१३॥

Amazing! Salutations to me who is skilled and there is no one else like him, who without even touching this body, holds all the world.॥13॥

अहो अहं नमो मह्यं यस्य मे नास्ति किंचन।
अथवा यस्य मे सर्वं यद् वाङ्मनसगोचरम्॥२-१४॥

आश्चर्य है, मुझको नमस्कार है, जिसका यह कुछ भी नहीं है अथवा जो भी वाणी और मन से समझ में आता है वह सब जिसका है॥१४॥

Amazing! Salutations to me who either does not possess anything or possesses anything that could be referred by speech and mind.॥14॥

ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं नास्ति वास्तवं।
अज्ञानाद् भाति यत्रेदं सोऽहमस्मि निरंजनः॥ २-१५॥

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता यह तीनों वास्तव में नहीं हैं, यह जो अज्ञानवश दिखाई देता है वह निष्कलंक मैं ही हूँ॥१५॥

Knowledge, object of knowledge and the knower, these three do not exist in reality. The flawless self appears as these three due to ignorance.॥15॥

द्वैतमूलमहो दुःखं नान्य- त्तस्याऽस्ति भेषजं।
दृश्यमेतन् मृषा सर्वं एकोऽहं चिद्रसोमलः॥ २-१६॥

द्वैत (भेद) सभी दुखों का मूल कारण है।
इसकी इसके अतिरिक्त कोई और औषधि नहीं है कि यह सब जो दिखाई दे रहा है वह सब असत्य है।
मैं एक, चैतन्य और निर्मल हूँ॥१६॥

Definitely, duality (distinction) is the fundamental reason of suffering.
There is no other remedy for it other than knowing that all that is visible, is unreal, and that I am one, pure consciousness.॥16॥

बोधमात्रोऽहमज्ञानाद् उपाधिः कल्पितो मया।
एवं विमृशतो नित्यं निर्विकल्पे स्थितिर्मम॥ २-१७॥

मैं केवल ज्ञान स्वरुप हूँ, अज्ञान से ही मेरे द्वारा स्वयं में अन्य गुण कल्पित किये गए हैं, ऐसा विचार करके मैं सनातन और कारणरहित रूप से स्थित हूँ॥१७॥

I am of the nature of light only, due to ignorance I have imagined other attributes in me. By reasoning thus, I exist eternally and without cause.॥17॥

न मे बन्धोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्तो निराश्रया।
अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम्॥२-१८॥

न मुझे कोई बंधन है और न कोई मुक्ति का भ्रम। मैं शांत और आश्रयरहित हूँ। मुझमें स्थित यह विश्व भी वस्तुतः मुझमें स्थित नहीं है॥१८॥

For me there is neither bondage nor liberation. I am peaceful and without support. This world though imagined in me, does not exist in me in reality.॥18॥

सशरीरमिदं विश्वं न किंचिदिति निश्चितं।
शुद्धचिन्मात्र आत्मा च तत्कस्मिन् कल्पनाधुना॥२-१९।

यह निश्चित है कि इस शरीर सहित यह विश्व अस्तित्वहीन है, केवल शुद्ध, चैतन्य आत्मा का ही अस्तित्व है। अब इसमें क्या कल्पना की जाये॥१९॥

Definitely this world along with this body is non-existent. Only pure, conscious self exists. What else is there to be imagined now?॥19॥

शरीरं स्वर्गनरकौ बन्धमोक्षौ भयं तथा।
कल्पनामात्रमेवैतत् किं मे कार्यं चिदात्मनः॥ २-२०॥

शरीर, स्वर्ग, नरक, बंधन, मोक्ष और भय ये सब कल्पना मात्र ही हैं, इनसे मुझ चैतन्य स्वरुप का क्या प्रयोजन है॥२०॥

The body, heaven and hell, bondage and liberation, and fear, these are all unreal. What is my connection with them who is conscious.॥20॥

अहो जनसमूहेऽपि न द्वैतं पश्यतो मम।
अरण्यमिव संवृत्तं क्व रतिं करवाण्यहम्॥२-२१॥

आश्चर्य कि मैं लोगों के समूह में भी दूसरे को नहीं देखता हूँ, वह भी निर्जन ही प्रतीत होता है। अब मैं किससे मोह करूँ॥२१॥

Amazingly, I do not see duality in a crowd, it also appear desolate. Now who is there to have an attachment with.॥21॥

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे बन्ध आसीद्या जीविते स्पृहा॥ २-२२॥

न मैं शरीर हूँ न यह शरीर ही मेरा है, न मैं जीव हूँ , मैं चैतन्य हूँ। मेरे अन्दर जीने की इच्छा ही मेरा बंधन थी॥२२॥

I am not the body, nor is the body mine. I am consciousness. My only bondage is the thirst for life.॥22॥

अहो भुवनकल्लोलै- र्विचित्रैर्द्राक् समुत्थितं।
मय्यनंतमहांभोधौ चित्तवाते समुद्यते॥ २-२३॥

आश्चर्य, मुझ अनंत महासागर में चित्तवायु उठने पर ब्रह्माण्ड रूपी विचित्र तरंगें उपस्थित हो जाती हैं॥२३॥

Amazingly, as soon as the mental winds arise in the infinite ocean of myself, many

waves of surprising worlds come into existence.॥23॥

मय्यनंतमहांभोधौ चित्तवाते प्रशाम्यति।
अभाग्याज्जीववणिजो जगत्पोतो विनश्वरः॥ २-२४॥

मुझ अनंत महासागर में चित्तवायु के शांत होने पर जीव रूपी वणिक का संसार रूपी जहाज जैसे दुर्भाग्य से नष्ट हो जाता है॥२४॥

As soon as these mental winds subside in the infinite ocean of myself, the world boat of trader-like 'jeeva' gets destroyed as if by misfortune.॥24॥

मय्यनन्तमहांभोधा- वाश्चर्यं जीववीचयः।
उद्यन्ति घ्नन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति स्वभावतः॥२-२५॥

आश्चर्य, मुझ अनंत महासागर में जीव रूपी लहरें उत्पन्न होती हैं, मिलती हैं, खेलती हैं और स्वभाव से मुझमें प्रवेश कर जाती हैं॥२५॥

Amazingly, in the infinite ocean of myself, the waves of life arise, meet, play and disappear naturally.॥25॥

*****

कहा जाता है कि अष्टावक्र द्वारा रचित महागीता का एक श्लोक हज़ार माणिकों की तुलना मे भी बहुत अमूल्य है क्यूंकी अष्टावक्र गीता (Ashtavakr Geeta) के श्लोकों मे गागर मे सागर भरने जैसा बताया गया है। लोक हित के लिए गीता बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसे पढ़ना भी आवश्यक है।

अगर अष्टावक्र गीता से संबन्धित किसी भी सलाह सुझाव या शिकायत के लिए आप अपना कीमती विचार Comments के माध्यम से हम तक पहुंचाए। इसके अतिरिक्त आप इसे अपने दोस्तों के साथ जरूर शेयर करें।